श्रीमते रामानुजाय नमः ।

सुजन सम्मेलन

182

गणे विद्यागता यस्य प्रथमं नाम घोष्यते ।
सर्वतन्त्रस्वतन्त्रोऽसौ राममिश्र सुधीरयम् ॥

॥ श्रीः ॥

॥ श्रीमते रामानुजाय नमः ॥

सज्जन महाशय !

आज वडा सुदिन और माङ्गलिक समय है कि हम भारतवर्षीय जिनके यहाँ सृष्टि के आदि कालही से सभ्यता, आत्मज्ञान, परार्थे आत्मसमर्पण, आत्मा की अनाद्यन्तता ज्ञान चला आया है बल्कि समय के फेर से कुछ पुरानी प्रतिष्ठा पुरानी सी पडगयी है, वे इस स्थान में एकत्र हुये हैं अवश्यही इसे सौभाग्य मानना और कहना चाहिये, क्योंकि वैदिक मत और जैन मत सृष्टि की आदि से बराबर अविछिन्न चले आये हैं और इन दोनों मजहबों के सिद्धान्त विशेष घनिष्ठ समीप सबन्ध रखते हैं जैसा कि पूर्व में मैं कह चुका हूँ और जैसा कि सत्कार्यवाद, सत्कारणवाद, परलोकास्तित्व, आत्मा का निर्विकारत्व, मोक्ष का होना और उसका नित्यत्व, जन्मान्तर के पुण्य पाप से जन्मान्तर में फल भोग, व्रतोपवासादिव्यवस्था, प्रायश्चित्त-व्यवस्था, महाजनपूजन, शब्दप्रामाण्य इत्यादि समान

है, वस तो इसी हेतु मुझे यहाँ यह कहते हुए मेरा शरीर पुलकित होता है कि आज का यह हमारा जैनों के सङ्ग एक स्थान में उपस्थित होकर सभाषण वह है कि जो चिरकाल के बिछुडे भाई भाई का होता है। सज्जनों! यह भी याद रखना जहॉ भाई, भाई का रिस्ता है वहॉ कभी कभी लडाई की भी लीला लग जाती है परन्तु याद रहे उसका कारण केवल अज्ञानही होता है।

इस देश में आज कल अनेक अल्पज्ञ जन बौद्ध मत और जैन मत को एक जानते हैं और यह महा भ्रम है। जैन और बौद्धों के सिद्धान्त को एक जानना ऐसी भूल है कि जैसे वैदिक सिद्धान्त को मान कर यह कहना कि वेदों मे वर्णाश्रमव्यवस्था नहीं है अथवा जातिव्यवस्था नहीं है, अथवा यह कहना कि द्विजों ने शूद्रों को झूठ मूठ छोटा बनाकर उन्हें बडे क्लेश दिये अब हम उन्हें क्लेशमुक्त करेंगे सज्जनों! आप जानते हैं दुनिया में रुपया बहुतही आवश्यक वस्तु है और वह बडेही कष्ट से मिलता है यदि कोई उसका सीधा और उत्तम द्वार है तो शिल्प और सेवा, तो अब ध्यान से जानना, कि द्विजों में ब्राह्मण क्षत्रिय सब

से बड़े समझे गये हैं उन्होंने अपने हाथ में आवश्यक बात कोई न रक्खी। ब्राह्मणों ने अपने हाथ में केवल कुश मुष्टि रक्खी और क्षत्रियों ने खड्ग कोशमुष्टि रक्खी। तब भला देखो तो जिन्हों ने अपने हाथ में निकम्मी चीजें रख कर वैश्यों को कृषिवाणिज्य दे डाला और शूद्रों को उससे भी बढ कर शिल्प और सेवा दे डाली। सज्जनों! जानते हो शिल्प कौन चीज है? शिल्प वह है कि जिसके कारण इगलेंड जगत् का बादशाह है नहीं २ कहो शाहनशाह है और जिस्के अभावही से हमारा देश, देश इसे क्या कहें, जन्मभूमि, जननी, भारतभूमि रसातल को जा रही है। विचार का स्थान है जब शिल्प शूद्रों के हाथ में दे डाला तब तो वैश्य भी बिचारे शूद्रों के पीछे पड़ गये, क्योंकि कृषि में दैवी आपत् का भय रहता है और वाणिज्य में तो और भी अधिक आपत्ति है, सबसे अच्छी शूद्रों की जीविका है। शिल्प, और सेवा, जिस्के न कोई आपत है नतो नुकसान। तब ही तो कहा गया है—

स्वर्णपुष्पमयी पृथ्वी चिन्वन्ति पुरुषास्त्रय'।
शूराश्च कृतविद्याश्च ये च जानन्ति सेवितुम्॥

तब तो देखने का स्थान है कि क्षत्रिय की जीविका

तो हथेली में जान रख कर है और ब्राह्मण की तो उससे भी कठिन है। जब वह बारह और बारह चौबीस वर्ष विद्यार्जन करेगा तब वह जीविका करेगा परन्तु शूद्र का जीवन कैसा सुलभ है। जहाँ पर देखो वहाँ पर सर्वत्र शूद्रों पर अनुग्रह है—

न शूद्रे पातकं किंचिन्नच संस्कारमर्हति।

द्विजों के लिये मनुने नियम किया है कि वे फलां फला देश में निवास करें। परन्तु शूद्रों के लिये वे कहते हैं—

एतान् द्विजातयो देशान् सश्रयेरन् प्रयत्नतः।
शूद्रस्तु यत्र कुत्रापि निवसेद् वृत्तिकर्षितः॥

तब तो शूद्रों के लिये मनु ने देश की यथेच्छ आज्ञा देदी अब क्या चाहिये।

बस तो इस रीति पर यह भी अज्ञों की दन्त कथा है कि जैन और बौद्ध एक समान हैं। सज्जनों! बुरा न मानों और बुरा मानने की बातही कौनसी है जब कि खाद्यखण्डनकार श्रीहर्ष ने स्वयं अपने ग्रन्थ में बौद्ध के साथ अपनी तुलना की है और कहा है कि हम लोगों से [याने निर्विशेषाद्वैत सिद्धान्तियों से] और बौद्धों से यही भेद है कि हम ब्रह्म की सत्ता मानते हैं और सब मिथ्या कहते हैं, परन्तु बौद्धशिरोमणि

माध्यमिक सर्व शून्य कहता है तब तो जिन जैनों ने सब कुछ माना उनसे नफरत करने वाले कुछ जानते ही नहीं और मिथ्या द्वेष मात्र करते हैं यह कहना होगा।

सज्जनों! जैन मत से और बौद्ध सिद्धान्त से जमीन आसमान का अन्तर है। उसे एक जान कर द्वेष करना यह अज्ञजनों का कार्य है। सब से अधिक वे अज्ञ हैं कि जो जैन सम्प्रदायसिद्ध मेलों मे विघ्न डाल कर पाप भागी होते हैं।

सज्जनों! आप जानते हैं जैनों में जब रथयात्रा होती है तब किनकी मूर्त्ति रथ में बिराजती हैं? सज्जनों! देव गन्धर्वों से लेकर पशु पक्षि पर्यन्त जो पूजा की जाती है वह किसी मूर्ति की! अथवा मट्टी पत्थर की नहीं की जाती है जो ऐसा जानते हैं वे ऐसे अज्ञ हैं कि उन्हें जगत् में डेढ़ अकल मालुम होती है, याने एक में आप स्वय, आधी में सब जगत्। क्या मूर्त्तिपूजक मूर्त्ति निन्दकों से भी कम अकल हैं!

सज्जनों! मूर्त्तिपूजा वह है कि जिसे मूर्त्तिनिन्दक निस करते हैं परन्तु यह नहीं जानते कि इसमें हमारी ही निन्दा होती है। देखिये ऐसा कौन देश, नगर, ग्राम, वन, उपवन है कि जहाँ पूज्य महारानी विक्टो-

रिया की मूर्ति नहीं है और लोग उसे पवित्रभाव से पूजन नहीं करते। ठीक ही है।

गुणाः सर्वत्र पूज्यन्ते। पद हि सर्वत्र गुणैर्निधीयते।

जब उन में ऐसे गुण थे तो उनकी पूजा कौन न करे। बस तो अब आप को ढोल की पोल अवश्य ज्ञात हुई होगी, मिशनरी लोगों की मूर्त्ति पूजन निन्दा देख करही हमारे (मजहबी न सही देशभाई ब्रह्म-समाजी आर्य्यसमाजी) देशवासी मूर्त्ति निन्दा करने लगे हैं।

सज्जनो! बुद्धिमान् लोग जब गुण की पूजा करते हैं तब जैसी हमारी पूज्य मूर्तियों में पूज्यता बुद्धि है वैसेही जहाँ पूजायोग्य गुण है वहाँ सर्वत्र पूजा करनी चाहिये। सज्जनो! ज्ञान, वैराग्य, शान्ति, क्षान्ति, अदम्भ, अनीर्ष्या, अक्रोध, अमात्सर्य, अलोलुपता, शम, दम, अहिंसा, समदृष्टिता इत्यादि गुणों में एक एक गुण ऐसा है कि जहाँ वह पाया जाय वहाँ पर बुद्धिमान् पूजा करने लगते हैं तब तो जहाँ ये पूर्वोक्त सब गुण निरतिशयसीम होकर विराजमान हैं उनकी पूजा न करना अथवा गुण पूजकों की पूजा में बाधा डालना क्या इनसानियत का कार्य है ? महाशय !

वैदिक जन ! अथवा मूर्तिपूजा विद्वेषि नूतन मजहवी सुजन जन ! जैनों में जिनका रथ प्राय. निकलता है वह किनका निकलता है ? आप जानते हैं ? वे महानुभाव हैं पारस नाथ स्वामी, महावीर स्वामी जिनदेव और ऐसेही ऐसे तीर्थङ्कर, तब तो उनकी पूजा का विरोध करना अथवा निन्दा करना यह अज्ञ का कार्य नही है ! सुजनों ! आपने कभी यह श्लोक सुना है जिनमें पार्श्वनाथ स्वामी के विषय में, काम देव और उनकी पत्नी का सम्वाद है ।

> कोऽय नाथ ! जिनो, भवेत्तव वशी हूँ हूँ प्रतापी प्रिये।
> हूँ हूँ तर्हि विमुञ्च कातरमते शौर्यावलेपक्रियाम ॥
> मोहोऽनेन विनिर्जित प्रभुरसौ तत्किंकराः के वयम्।
> इत्येव रतिकामजल्पविषयः पार्श्व प्रभु पातु न. ॥

॥ सज्जनों ! जिनके ब्रह्मचर्य की स्तुति काम और रति करते है, वे कैसे है जिनकी हुशयारी को चोर सराहे वेही तो हुशयार हैं ! पूरा विश्वास है कि अव आप जान गये होंगे कि वैदिक सिद्धान्तियों के साथ जैनों के विरोध का मूल केवल अज्ञों की अज्ञता है। और वह ऐसी अज्ञता है कि अनेक वार पूर्व में उस अज्ञता के कारण अदालत हो चुकी है। सज्जनों ! अज्ञता

ऐसी चीज है उसके कारण अनेक वेर अनेक लोग बिना जाने बूझे दूसरे की निन्दा कर बैठते हैं। थोड़ ही दिन की बात है कि किसीने नये मजहबी जोश में आकर जैन मत में मिथ्या आरोप किये और अन्त में हानि उठाई। मै आप को कहाँ तक कहूं बडे २ नामी आचार्यों ने अपने ग्रन्थों में जो जैन मत खण्डन किया है वह ऐसा किया है कि जिसे सुन देख कर हँसी आती है।

मैं आप के समुख आगे चल कर स्याद्वाद का रहस्य कहूगा तब आप अवश्य जानजाँयगे कि वह एक अभेद्य किला है उसके अदर मायामय गोले नहीं प्रवेश कर सकते। परतु साथही खेद के साथ कहा जाता है कि अब जैनमत का बुढापा आगया है अब इसमे इने गिने साधु, गृहस्थ, विद्यावान रहगये हैं। जैसे कि साधुवर्य परमोदासीनस्वभाव, आत्मवि-ज्ञानपरायण, ज्ञान विज्ञान सपन्न श्री धर्म विजय जी साधु सम्प्रदाय में हैं और गृहस्थों में तो विद्वानों की सख्या और भी कम है जहाँ तक मुझे यादगारी और जानकारी है पण्डिताशिरोमणि पन्नालालजी न्यायदिवा-कर इस मत के अच्छे जानकार हैं और उनके कारण

जैन सम्प्रदाय की बडी प्रतिष्ठा है और नाम है। और नवीन गृहस्थमण्डली में होनहार और जैन सम्प्रदाय को लाभ पहुँचाने की योग्यता वाले खुरजा के सेठ मेवा राम जी हैं, वे शास्त्रानुरागी हैं और शास्त्रज्ञानुरागी हैं उन्होंने अपने यहाँ एक स्वरूपानुरूपा संस्कृतपाठशाला स्थापित की है और उस पाठशाला में विविधविद्या विशारद प्रसिद्धनामा श्रीमान् पण्डित चण्डी प्रसादजी सुकुल जैसे धुरन्धर अध्यापक हैं। देखा जाता है कि इस पाठशाला का फल उत्तम है। पण्डित श्यामसुन्दर वैश्य इसी पाठशाला के फल स्वरूप हैं जिनका शास्त्र में अच्छा अभिनिवेश है। आशा है कि यह पाठशाला जैन लोगों में विद्या प्रचार की मूलभूत होगी। सज्जनो! एक दिन वह था कि जैन सम्प्रदाय के आचार्यों के हुङ्कार से दसों दिशाएँ गूँज उठती थीं, एक समय की वार्ता है कि हमारही (याने वैदिक सम्प्रदायी वैष्णव ने) किसी साम्प्रदायिक ने हेमचन्द्राचार्य जी को देख कर (जोकि सन्यासवेषके थे) कहा।

आगतो हेमगोपालो दण्डकम्बलमुद्वहन्।

बस तो फिर क्याथा उन्होंनें मन्दमुसुकान के साथ उत्तर दिया कि।

षड्दर्शनपशुप्रायॉश्चारयज्जैनवाटके ॥

सज्जनों! इस श्लोक के पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध को सुन कर आप लोग खूब जॉनगये होंगे कि पूर्व समय पर आपस में विद्वानों के हँसी ठठोल भी कैसे होते थे। ये महानुभाव हेमचन्द्राचार्य व्याकरण से लेकर दर्शनशास्त्रपर्यन्त सर्व विषय में अप्रतिम आचार्य थे। सज्जनों! जैसे काल चक्र ने जैनमत के महत्व को ढाक दिया है वैसेही उस्के महत्व को जाननें वाले लोग भी, अब नहीं रहगयें। रंज्जरे सॉचे सूर को बैरी करें बखान। यह किसी भाषा कवि नें बहुतही ठीक कहा है। सज्जनों! आप जानते हो मैं वैष्णव सम्प्रदाय का आचार्य हूँ यही नहीं है मैं उस संप्रदाय का सर्वतोभाव से रक्षक हूँ और साथही उस्की तरफ कडी नजर से देखने वाले का दीक्षक भी हूँ तौ भी मेरी मजलिस में मुझे यह कहना सत्य के कारण आवश्यक हुआ है कि जैनों का ग्रथसमुदाय, सारस्वत महासागर है। उस्की ग्रन्थ सख्या इतनी अधिक है कि उन ग्रन्थों का सूचीपत्र भी एक महानिबन्ध हो जायगा। जिन्हों ने जैन पुस्तक भण्डार देखे हैं उन्हें यह कहना आवश्यक न होगा कि जैनों की ग्रन्थ सख्या जितनी

मुर्दाघ है उतनी (वैदिक संप्रदाय छोड कर) अन्यकी नहीं है। और उस पुस्तक समुदाय का लेख और लेख्य कैसा गम्भीर, युक्तिपूर्ण, भावपूरित विशद और अगाध है। इस्के विषय में इतनाही कह देना उचित है कि जिन्हों ने सारस्वत समुद्र में अपने मति मन्थान को डाल कर चिरान्दोलन किया है वेही जानते हैं। तबही तो कहागया है कि।

देवीं वाचमुपासते हि वहव सार तु सारस्वतम्।
जानीते नितरामसौ गुरुकुलक्लिष्टो मुरारि' कवि'॥
अब्धिर्लङ्घित एव वानरभटै. किन्तस्य।
गम्भीरतामापातालनिमग्नपीवरतनुर्जानाति मन्थाचल॥

सज्जनों। जैनमत का प्रचार कब से हुआ इस बारे में लोगों ने नाना प्रकार की उछल कूद किई है और अपने मनोनीत कल्पना किई है। और यह बात ठीक भी है जिस्का जितना ज्ञान होगा वह उस वस्तु को उतनाही और वैसाही समुझेगा। किसी अन्धे ने हाथी के पूँछ को धरा और कहने लगा कि हाथी लाठी जैसा लंबा होता है। परतु दूसरे अन्धे ने जब उस्की पीठ छुई तो कहने लगा कि वह छात जैसा होता है। परतु हाथी के कान स्पर्श करने वाले ने तो कहा कि वह सूप जैसा होता है।

षड्दर्शनपशुप्रायोंश्चारयज्जैनवाटके ॥

सज्जनो! इस श्लोक के पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध को सुन कर आप लोग खूब जानगये होंगे कि पूर्व समय पर आपस में विद्वानों के हँसी ठठोल भी कैसे होते थे। ये महानुभाव हेमचन्द्राचार्य व्याकरण से लेकर दर्शनशास्त्रपर्यन्त सर्व विषय में अप्रतिम आचार्य थे। सज्जनो! जैसे काल चक्र ने जैनमत के महत्व को ढाक दिया है वैसेही उसके महत्व को जानने वाले लोग भी, अब नहीं रहगये। रज्जन साँचे सूर को वैरी करे बखान। यह किसी भाषा कवि ने बहुतही ठीक कहा है। सज्जनो! आप जानते हो मैं वैष्णव सम्प्रदाय का आचार्य हूँ यही नहीं है मैं उस सम्प्रदाय का सर्वतोभाव से रक्षक हूँ और साथही उसकी तरफ कड़ी नजर से देखने वाले का दीक्षक भी हूँ तो भी भरी मजलिस में मुझे यह कहना सत्य के कारण आवश्यक हुआ है कि जैनों का ग्रथसमुदाय, सारस्वत महासागर है। उसकी ग्रन्थ सख्या इतनी अधिक है कि उन ग्रन्थों का सूचीपत्र भी एक महानिबन्ध हो जायगा। जिन्हों ने जैन पुस्तक भण्डार देखे हैं उन्हें यह कहना आवश्यक न होगा कि जैनों की ग्रन्थ सख्या जितनी

सुदीर्घ है उतनी (वैदिक सम्प्रदाय छोड़ कर) अन्यकी नहीं है। और उस पुस्तक समुदाय का लेख और लेख्य कैसा गम्भीर, युक्तिपूर्ण, भावपूरित विशद और अगाध है ! इस्के विषय में इतनाही कह देना उचित है कि जिन्हों ने सारस्वत समुद्र में अपने मति मन्थान को डाल कर चिरान्दोलन किया है वेही जानते हैं। तबही तो कहागया है कि।

देवीं वाचमुपासते हि वहव. सार तु सारस्वतम् ।
जानीते नितरामसौ गुरुकुलक्लिष्टो मुरारि' कवि ॥
अब्धिर्लङ्घित एव वानरभटै किन्तस्य ।
गम्भीरतामापातालनिमग्नपीवरतनुर्जानाति मन्थाचल'॥

सज्जनों ! जैनमत का प्रचार कब से हुआ इस बारे में लोगों ने नाना प्रकार की उछल कूद किई है और अपने मनोनीत कल्पना किई है। और यह बात ठीक भी है जिस्का जितना ज्ञान होगा वह उस वस्तु को उतनाही और वैसाही समझेगा। किसी अन्धे ने हाथी के पूँछ को घरा और कहने लगा कि हाथी लाठी जैसा लंबा होता है। परतु दूसरे अन्धे ने जब उस्की पीठ छुई तो कहने लगा कि वह छात जैसा होता है। परतु हाथी के कान स्पर्श करने वाले ने तो कहा कि वह सूप जैसा होता है।

तो बस यही हाल संसार का है जिसके यहाँ जब सभ्यता का प्रचार हुआ तो उसने उसी तारीख से दुनिया की सब बात मान ली। जो छ: हजार वर्ष से सृष्टि को मान बैठे हैं उन्हें हम यदि अपना नित्य ज्ञान का संकल्प सुनावें तो वे हँस देंगे और कहेंगे कि कृष्ण बारह कल्प, श्वेत बारह कल्प, ब्रह्मा का द्वितीय परार्द्ध और मनु, मन्वन्तर, चतुर्युग व्यवस्था यह सब कल्पित है।

तब उन्हें जैन मत प्रचार की तारीख भी अवश्य ईस्वी समय के अनुसार ही कहनी होगी। और वह देंगे कि अधिक भी यदि जैन मत के प्रचार का काल कहा जाय तो छठीं सदी होगी। परंतु सज्जनों ! हम आपको ऐसी कच्ची मनमानी बात न कहनी चाहिये। ईश्वर की सृष्टि अनाद्यनन्त है और कल्प के भी पूर्व में कल्प है जब ऐसी स्थिति है तब तो इस कल्प की इस सृष्टि को भी इतना लम्
अङ्कों की शून्य सूचक वि
गणक की बुद्धि में भी

सज्जनों ! यह
चली आती है और आप

की आदिही में सर्जन करने वाले ने आवश्यक वस्तुओं का ज्ञान देदिया था, उस्का निरूपण मेरे जैसा अज्ञ कहाँ तक कर सकता है परंतु यह अवश्य कहा जा सकता है कि परमेश्वर ने अपनी सृष्टि में लौकिक उन्नति की सीढी पर्यन्त सबही विषय सृष्टि के आदि में जीवों को दिखा दिया था तो अब आप ऐसा जानिये कि जैसे उन्हें आदि काल में खाने पीने न्याय, नीति और कानून का ज्ञान मिला, वैसेही अध्यात्म शास्त्र का ज्ञान भी जीवों ने पाया। और वे अध्यात्म शास्त्र में सब हैं जैसे साख्य योगादि दर्शन और जैनादि दर्शन।

तब तो सज्जनो! आप अवश्य जान गये होंगे कि जैन मत जब से प्रचलित हुआ है। जब से ससार में सृष्टि का आरम्भ हुआ तब से यही इस्का सत्य उत्तर है।

जिनकी सभ्यता आधुनिक है वे जो चाहें सो कहें परंतु मुझे तो "(जिसे अपौरुषेय वेद मानने में किसी प्रकार का असंतोष और अनङ्गीकार नहीं है यही नहीं, परंतु सर्वथा तृप्ति, विश्वास, और चेतः प्रसत्ति है) इसमें किसी प्रकार का उज्र नहीं है कि जैन दर्शन वेदान्तादि दर्शनों से भी पूर्व का है। तबही तो भगवान्

वेदव्यास महर्षि ब्रह्मसूत्रों में कहते हैं—नैकस्मिन्नसंभवात्। सज्जनों! जब वेदव्यास के ब्रह्म सूत्र प्रणयन के समय पर जैनमत था। तब तो उसके खण्डनार्थ उद्योग किया गया, यदि वह पूर्व में नहीं था तो वह खण्डन कैसा और किस्का? सज्जनों! समय अल्प है और कहना बहुत है इससे छोड़ दिया जाता है नहीं तो बात यह है कि वेदों में अनेकान्त वाद का मूल मिलता है। सज्जनों! मैं आप को वेदान्तादि दर्शन शास्त्रों का और जैनादि दर्शनों का कौन मूल है यह कह कर सुनाताहूँ। उच्च श्रेणी के बुद्धिमान् लोगों के मानस निगूढ विचारही दर्शन हैं। जैसे—अजातवाद, विवर्तवाद, दृष्टिसृष्टिवाद, परिणामवाद, आरम्भवाद, शून्यवाद, इत्यादि दार्शनिकों के निगूढ विचारही दर्शन हैं। बस तब तो कहना होगा कि सृष्टि की आदि से जैन मत प्रचलित है सज्जनों! अनेकान्तवाद तो एक ऐसी चीज है कि उसे सब को मानना होगा, और लोगों ने माना भी है। देखिये विष्णु पुराण में लिखा है—

> नरकस्वर्गसंज्ञे वै पुण्यपापे द्विजोत्तम!
> वस्त्वेकमेव दुःखाय सुखायेर्ष्या जमाय च।
> कोपाय च यतस्तस्माद्वस्तु वस्त्वात्मकं कुतः १

यहाँ पर जो पराशर महर्षि कहते हैं कि वस्तु वस्त्वात्मक नहीं है, इसका अर्थ यही है कि कोई भी वस्तु एकान्ततः एक रूप नहीं है, जो वस्तु एक समय सुख हेतु है वह दूसरे क्षण में दुःख की कारण हो जाती है, और जो वस्तु किसी क्षण में दुःख की कारण होती है वह क्षण भर में सुखकी कारण हो जाती है। सज्जनो! आपने जाना होगा कि यहाँ पर स्पष्टही अनेकान्तवाद कहा गया है। सज्जनो! एक बात पर और भी ध्यान देना जो–सदसद्भ्यामनिर्वचनीय जगत कहते हैं उनको भी विचार दृष्टि से देखा जाय तो अनेकान्तवाद मानने में उज्र नहीं है क्योंकि जब वस्तु सत् भी नहीं कही जाती और असत् भी नहीं कही जाती तो, कहना होगा कि किसी प्रकार से सत् हो कर भी वह किसी प्रकार से असत है, इस हेतु न वह सत् कही जा सकती है और न तो असत् कही जा सकती है, तो अब अनेकान्तता मानना सिद्ध होगया।

सज्जनो! नैयायिक तम को तेजो ऽभावस्वरूप कहते हैं और मीमांसक और वैदान्तिक बडी आरभटी से, उसको खण्डन करके उसे भावस्वरूप कहते हैं तो देखने की बात है कि आज तक इसका कोई फैसला

नहीं हुआ कि कौन ठीक कहता है, तो अब क्या निर्णय होगा कि कौन बात ठीक है, तब तो दोकी लड़ाई में तीसरे की पौबारा है याने जैन सिद्धान्त सिद्ध हो गया, क्योंकि वे कहते हैं कि वस्तु अनेकान्त है उसे किसी प्रकार से भावरूप कहते हैं, और किसी रीति पर अ-भावस्वरूप भी कह सकते हैं। इसी रीति पर कोई आत्मा को ज्ञानस्वरूप कहते हैं और कोई ज्ञानाधारस्वरूप बोलते हैं तो बस अब कहनाहीं क्या अनेकान्तवाद ने पद पाया। इसी रीति पर कोई ज्ञान को द्रव्यस्वरूप मानते हैं और कोई वादी गुणस्वरूप। इसी रीति पर कोई जगत् को भावस्वरूप कहते हैं और कोई शून्यस्वरूप तब तो अनेकान्तवाद अनायास सिद्ध हो गया।

कोई कहते हैं कि घटादि द्रव्य हैं और उन में रूपस्पर्शादि गुण हैं। परतु दूसरी तरफ के वादी कहते हैं कि द्रव्य कोई चीज नहीं है वह तो गुण समुदाय स्वरूप है। रूप, स्पर्श, सख्या, परिमाण इत्यादि का समु दाय ही तो घट है इसे छोड कर घट कौन वस्तु है। कोई कहते हैं आकाश नामक शब्द जनक एक निरवयव द्रव्य है। परतु अन्य वादी कहते हैं कि वह तो शून्य

सज्जनों! कहाँ तक कहा जाय कुछ वादि

.. है कि गुरुत्व गुण है। परंतु दूसरी तरफ वादी
॥ का कहना है कि गुरुत्व कोई चीज नहीं है
थ्वी में जो आकर्षण शक्ति है उसे न जान कर लोगों
ने गुरुत्व नामक गुण मान लिया है।

मित हित वाक्य पथ्य है, उसीसे ज्ञान होता है
वाग्जाल का कोई प्रयोजन नहीं है इस हेतु यह विषय
यहाँही छोड दिया जाता है और आशा की जाती है
कि जैनमत के क्रमिक व्याख्यान दिये जायँगे।

शुभानि भूयाद्वर्द्धमानानि।

शम्

स्वामी राममिश्र शास्त्री

अगस्त्याश्रमाश्रम

काशी.

मि० पौषशुक्ल प्रतिपत्—
बुधवार स० १९६२